गणितदर्शन

रचयिता

पूर्वाम्नाय-गोवर्द्धनमठ-पुरीपीठाधीश्वर-श्रीमज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य

स्वामिनिश्चलानन्दसरस्वती

गणितदर्शन

स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान - श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीका
पैंतीसवाँ पुष्प

★

गणितदर्शन

रचयिता
पूर्वाम्नाय - गोवर्द्धनमठ - पुरीपीठाधीश्वर - श्रीमज्जगद्गुरु -
शङ्कराचार्य
स्वामिनिश्चलानन्दसरस्वती

प्रथम संस्करण
विक्रमसंवत् २०६२ ईसवी सन् २००५

द्वितीय संस्करण
विक्रमसंवत् २०९८ ईसवी सन् २०१८

सर्वाधिकार सुरक्षित

सहयोगराशि ३० रुपये

प्रकाशक
स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान श्रीगोवर्द्धनमठ,
श्रीशङ्कराचार्यपीठ, पुरी १ (उड़ीसा)
७५२००१

श्रीहरिः

श्रीगणेशाय नमः

★

गणितदर्शन

★

भूमिका

श्रीहरिगुरुकरुणाके अमोघ प्रभावसे पूज्यपादकी गणितसे सम्बद्ध 'गणितदर्शन' तीसरी रचना है। इससे पूर्व उन्होंने 'स्वस्तिक गणित' और 'अङ्कपदीयम्' की रचना की है।

'गणितदर्शन' में गणितको भोग और मोक्ष - उभयप्रद सिद्ध किया गया है। एक, दो, तीन आदि स्थलोंमें उत्तरोत्तर एककी असङ्ख्यपर्यन्त विरामरहित वृद्धि गणितकी भोगप्रदता सिद्ध करती है। ०से ९ पर्यन्त अङ्कोंकी क्रमिक आवृत्ति गणितकी मोक्षपरता सिद्ध करती है। पदार्थविज्ञानसे गणित-

विज्ञानकी यहं विलक्षणता गणितकी अपूर्व महत्ता है। आकाशमें शब्द; वायुमें शब्द, स्पर्श; तेजमें शब्द, स्पर्श, रूप; जलमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और पृथिवीमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्धके अनुशीलनसे उत्तरोत्तर एक गुणकी अधिकता दृष्टिगोचर होती है। परन्तु पार्थिव - प्रपञ्चमें उत्तरोत्तर क्रमिक विशेषता परिलक्षित नहीं होती। फिर भी, अँवान्तर विविध और विचित्र विशेषताओंके कारण चूर्ण, पिण्ड, कपाल, घट तथा बीज, अङ्कुर, पत्र, पुष्प और फलकी परस्पर विलक्षण अर्थक्रियाकारिता चरितार्थ होती है। गणितजगत् में क्रमवृद्धिकी परम्परा कहीं भी निरुद्ध नहीं होती। परन्तु ० से ९ पर्यन्त अङ्कोंकी १०से १९, २० से २९ और ३० से ३९ आदि स्थलोंमें क्रमिक अनुवृत्ति पदार्थगत विशेषताके अवरोधको द्योतित करती है। यह अवरोध ० से ९ तकके अङ्कोंको तत्त्व सिद्ध करता है। तत्त्वानुशीलन मोक्षमें हेतु है। यद्यपि अक्षराम्नायगत अक्षरोंके तुल्य अङ्का-

म्नायगत अङ्कों की अचिद्रूपता ही परिलक्षित होती है, परन्तु परब्रह्मपर्यवसायिनी परावाक्के तुल्य निर्विशेषताकी अवधि शून्यकी ब्रह्मरूपता ही सिद्ध होती है।

निर्विशेषताकी अवधि होनेसे साङ्ख्योक्त पुरुषको अनीश्वर और अतत्त्व कहनेकी प्रथा है। **'अनीश्वरमतत्त्वं च तत्त्वम्'** (महाभारत-शान्तिपर्व ३०५.४१), **'निस्तत्त्वः पञ्चविंशकः'** (महा० शान्तिपर्व ३०५.४३)। समानवाचोयुक्तिसे निर्विशेष एकको शून्य कहनेकी प्रथा गणितजगत्में है। गणितजगत् में १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ संज्ञक क्रमशः ये नौ अङ्क हैं। दशवाँ अतत्त्वसंज्ञक शून्यतत्त्व है। १० न तो शून्य है, न एक; न दोनोंका योग या ऋण ही। वह शून्य और एकका समवेत स्वरूप है। उसकी अभिव्यक्ति गणितमें नौके बाद दशवें स्थानपर, उसी प्रकार होती है, जिस प्रकार अक्षराम्नायमें विसर्गबीज अक्षरमूल अनुस्वारात्मक बिन्दुकी अभिव्यक्ति अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ऐ, ओ और औके बाद दशवें स्थानपर

असे संलग्नअंकेरूपमें होती है। दशको अङ्क मानते ही एकके तुल्य शून्यको अङ्क माननेकी बाध्यता सिद्ध होती है। शून्य न तो एक है, न एकसे अधिक। अतएव एकसे निर्विशेष अवश्य है। अतः शून्य एकसे पूर्व अवश्य है। इस प्रकार शून्यसहित दशपर्यन्त ग्यारह सङ्ख्याकी सिद्धि होती है। शून्य पुरुषसदृश है। एकसे दशपर्यन्त सूक्ष्म - स्थूल द्विविध आकाशादि दशभूततुल्य हैं।

शून्य और एकके मध्यमें स्थित शून्याश्रिता अनुमानैकगोचरा शक्ति प्रकृतिस्वरूपा मायातुल्या है। उससे संश्लिष्ट शून्य सविशेष सर्वेश्वरसदृश एक है। सर्वेश्वरतुल्य उस एकसे आकाशतुल्य एककी उत्पत्ति होती है। ० + १ = १ के सुसमीक्षणसे यह तथ्य व्यक्त होता है।

उक्त रीतिसे यह तथ्य सिद्ध है कि गणितजगत्में शून्यकी प्रसिद्धि अभावरूपमें होनेपर भी वह निस्तत्त्व और अनीश्वर नहीं है। उसकी निस्तत्त्वता और अनीश्वरताका तात्पर्य साङ्ख्योक्त पुरुषतुल्य उसके परिणाम, परिणामित्व और कर्तृत्व

का प्रतिषेधमात्र है।

साङ्ख्यदर्शन पुरुष, प्रकृति और प्राकृत कहनेपर सन्निहित होता है। वेदान्तदर्शन ब्रह्म, शक्ति, सर्वेश्वर और विलास या विवर्त कहनेपर चरितार्थ होता है। गणितदर्शन शून्य, शक्ति, सविशेष और विलास या विवर्त कहनेपर गतार्थ होता है। शून्य ब्रह्मकल्प (ब्रह्मका प्रतीक) निर्विशेष पदार्थ है। शून्याश्रिता शक्ति (शून्यशक्ति) मायातुल्य है। ब्रह्म और मायाके युग्मरूप बीजात्मक सविशेष सर्वेश्वरसदृश अनभिव्यक्त एक है। शून्य और शक्तिके समवेतस्वरूप बीजात्मक एकसे व्यक्त एक आकाशकल्प है। २से १०पर्यन्त शेष अङ्क वायु आदि सूक्ष्म और स्थूल भूतकल्प हैं। ग्यारहसे असङ्ख्यपर्यन्त उनके विलास हैं। शून्य सर्वाश्रय सर्वोपादान सर्वाधिष्ठान है।

अक्षराम्नायतुल्य अङ्काम्नायको मोक्षशास्त्र

भूमिका

सिद्ध करनेके उद्देश्यसे गणितदर्शनकी रचना की गयी है। इसमें स्वस्तिकगणित और अङ्कपदीयम्में सन्निहित दार्शनिक तथ्योंके अतिरिक्त तथ्योंका प्रकाश समासशैलीमें किया गया है। इसमें केवल शून्य और सङ्ख्यागत इकाई, दहाई सैकड़ागत शून्यके मान निकालनेकी अद्भुतविधाको दर्शाया गया है तथा शून्यसंलग्न सङ्ख्याकी उपलब्धिके प्रकारको अनुपम ढङ्गसे प्रस्तुत किया गया है। प्रसङ्गानुसार साङ्ख्यदर्शन, शून्यदर्शन (बौद्धागमसम्मत शून्यवाद) और वेदान्तदर्शनका सारार्थ भी समासशैलीमें मनोरम ढङ्गसे प्रस्तुत किया गया है।

– निवेदक

राजीवमिश्र (निज सचिव)

पुरी, ८.६.२०६२ (११ सित० २००५)

.विषया०

श्रीहरिः

श्रीगणेशाय नमः

★

गणितदर्शन

विषयानुक्रमणी

भूमिकादि ....अ से ऐ

क्रम	विषय	पृष्ठ
१.	मङ्गलाचरण	१
२.	गणितकी महत्ता	२
३.	शून्यतत्त्वकी पुरुषतुल्य निस्तत्त्वता	३
४.	शून्यकी अङ्काश्रयता	१०
५.	शून्यकी अङ्कमूलता	२०
६.	अङ्कोंकी भोगापवर्गता	४३
७.	उपसंहार	४७ - ४९

गणितदर्शन[1]

श्रीहरिः

श्रीगणेशाय नमः

★

गणितदर्शन

(भाद्रकृष्णपञ्चमी शुक्रवार २०६०, 2 सित.२००५, पुरी)

१.मङ्गलाचरण -

ह्रीं नमो वरदाय विघ्नहर्त्रे।।१।।

(गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत् १)

महासरस्वती देवी जिह्वाग्रे सन्निविश्यताम्।।२।।

(सरस्वतीरहस्योपनिषत् ४)

नमोऽनन्ताय महते कृष्णायाकुण्ठमेधसे।
योगेशाय च योगाय · ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये।।३।।

(सामरहस्योपनिषत्)

रूपं यत् तत् प्राहुरव्यक्तमाद्यं
ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम्।
सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहम्
स त्वं साक्षाद् विष्णुरध्यात्मदीपः।।४।।

(श्रीमद्भागवत १०.३.२४)

२.गणितकी महत्ता -

अर्थोपलब्धिमें गणितकी उपयोगिता विश्वविदित है। प्रशस्त कामोपभोगमें गणितगम्य ऋतु, तिथि, नक्षत्रादिका ज्ञान अपेक्षित है। यज्ञादिरूप धर्मानुष्ठानमें मुहूर्तका और आचार्य, यजमान, सामग्री आदिकी सङ्ख्याका परिज्ञान आवश्यक है। मोक्षोपलब्धिके लिए तत्त्वसङ्ख्याका परिज्ञान आवश्यक है। देश, काल, वस्तुरूप प्रभेदकी गणना गणितका विषय है। प्रकाशकी गति, सर्ग - स्थिति - प्रलयकी अवधि, लोक - लोकान्तरोंकी दूरी आदि तथ्योंका परिज्ञान वैदिकार्ष साहित्योंके परिशीलनसे ही सम्भव है। कालगर्भित और कालातीत सबका समास अथवा व्यासशैलीमें परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष चित्रण वेद और वैदिक वाङ्मयमें सन्निहित है। गणितका मौलिक स्वरूप शून्य, एक और दोनोंके विस्तारपर निर्भर करता है। अतएव इनका चित्रण आवश्यक है।

३.शून्यतत्त्वकी पुरुषतुल्य निस्तत्त्वता -

(१) सूत्र - <u>'अनीश्वरमतत्त्वं च तत्त्वम्'</u> (महाभारतशान्तिपर्व ३०५.४१), <u>'निस्तत्त्वः पञ्चविंशकः'</u> (महाभारतशान्तिपर्व ३०५.४३)

सूत्रार्थः- परिणाम और परिणामशील परिणामेश्वरतत्त्वसे विलक्षण पचीसवाँ तत्त्व निस्तत्त्व है।

व्याख्या - साङ्ख्यसम्मत अचित् पदार्थके चौबीस प्रभेद हैं। प्रकृति जिसे प्रधान या अव्यक्त भी कहते हैं, उसका तत्त्वान्तर परिणाम महत् (समष्टि बुद्धि) है। महत्का तत्त्वान्तर परिणाम अहम् है। अहम् सात्त्विक (वैकारिक), राजस और तामस - भेदसे त्रिविध है। सात्त्विक अहम्का विजातीय परिणाम मन है। राजस (तैजस) अहम्के कार्य पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ और पञ्च कर्मेन्द्रियाँ हैं। श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, रसना, घ्राण - ज्ञानेन्द्रियाँ और वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ - कर्मेन्द्रियाँ हैं। तामस अहम्के कार्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस

और गन्धरूप पञ्च तन्मात्राएँ अर्थात् अपञ्चीकृत पञ्च महाभूत हैं। तन्मात्राओंके कार्य पञ्च स्थूल महाभूत हैं। पञ्च स्थूल महाभूतोंके तारतम्यज सङ्घातरूप कार्य ब्रह्माण्ड और उसके अन्तर्गत स्थावर - जङ्गम प्राणी हैं।

उक्त अचित् - प्रभेदसे विलक्षण पचीसवाँ चिद्रूप पुरुष है। जो कि सच्चित् और विभु होता हुआ अनेक है।

विवक्षावशात् वेदान्तसम्मत अचित् पदार्थके भी चौबीस प्रभेद सिद्ध होते हैं। पुरुषकी शक्तिभूता प्रकृति माया है। उससे क्रमशः अपञ्चीकृत आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वीकी उत्पत्ति होती है। अपञ्चीकृत पञ्च भूतोंसे बुद्धि, मन, चित्त और अहङ्कारकी उत्पत्ति होती है। पञ्च कोशकी विवक्षासे बुद्धिमें अहम्का और मनमें चित्तका अन्तर्भाव होता है। उक्त पञ्च भूतोंसे नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जयसंज्ञक पञ्च उपप्राणोंके सहित प्राण, अपान, व्यान, उदान और समानरूप पञ्च प्राणों

तथा दश इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है। कोशकी विवक्षासे मुख्य प्राणमें शेष प्रभेदोंका अन्तर्भाव हो जाता है। अपञ्चीकृत पञ्च भूतोंसे पञ्चीकृत स्थूल आकाशादि पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार वेदान्तनयानुसार अचित् पदार्थोंके प्रकृति, अपञ्चीकृत पञ्च भूत, बुद्धि, मन, प्राण, दश इन्द्रिय और स्थूल पञ्चमहाभूतरूप चौबीस प्रभेद होते हैं।

उक्त अचित् - प्रभेदसे विलक्षण पचीसवाँ चिद्रूप पुरुष है। जो विभु सच्चिदानन्द शिवस्वरूप होता हुआ एक है। वह प्रकृतिरूपा निजशक्ति मायाके योगसे सर्वेश्वर और बुद्धि (अन्तःकरण) के योगसे जीव है। यह तथ्य "मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्" (श्वेताश्वतरोपनिषत् ४.१०), "प्रकृतिर्माया पुरुषः शिवः" (गणेशपूर्वतापिनीयोपनिषत् २.३), "अविद्या मूल–

प्रकृतिर्माया लोहतशुक्लकृष्णा” (शाण्डिल्योपनिषत् ३.१), “ब्रह्मशक्तिरेवप्रकृतिः” (निरालम्बोपनिषत्), “चैतन्यस्यैकरूपत्वाद्भेदो युक्तो न कर्हिचित्” (योगशिखोपनिषत् ४.१), “सत्यं ज्ञानमन्तमानन्दं ब्रह्म” (सर्वसारोपनिषत् ३), “महाभूतोत्थसूक्ष्माङ्गोपाधिकाः सर्वे जीवाः” (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् १), “अन्तःकरणोपाधिकाः सर्वे जीवाः” (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् १) आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे सिद्ध है।

साङ्ख्य और वेदान्तसम्मत कार्यात्मक तेईस तत्त्वोंका परिणामोपादान पुरुषाधिष्ठित प्रकृति, प्रधान या अव्यक्त है। वह महदादि कार्यवर्गको अस्तित्व प्रदान करनेके कारण सत्त्व है। पुरुषसापेक्ष, भोगभूमि तथा क्षयशील होनेके कारण वह क्षेत्र है और कार्यप्रपञ्चका उपादान तथा कर्तृत्वसम्पन्न होनेके कारण ईश्वर है। कार्य - कारणात्मक चौबीस वस्तुएँ अचित् होनेके कारण परार्थ अर्थात् तदर्थ हैं। तदर्थ होनेसे तत्त्व हैं। पुरुष कार्यप्रपञ्चका अनुपादान तथा अकर्ता

होनेके कारण अनीश्वर है। वह स्वप्रकाश अनन्यशेष निर्विशेष होनेसे अतत्त्व तथा निरपेक्ष होनेके कारण तत्त्व है। -

“अव्यक्तं क्षेत्रमित्युक्तं तथा सत्त्वं तथेश्वरः। अनीश्वरमवत्त्वं च वत्त्वं तत् पञ्चविंशकम्।। तत्त्वानि च चतुर्विंशत् परिसङ्ख्याय तत्त्वतः। सङ्ख्याः सह प्रकृत्या तु निस्तत्त्वः पञ्चविंशकः।।” (महाभारत ३०६.४१,४३)

साङ्ख्यप्रस्थानमें पुरुष कार्यकारणातीत है। प्रकृति केवल प्रकृति (कारण) है। महत्, अहम् और पञ्च तन्मात्राएँ प्रकृति - विकृति (कारणकार्य उभयात्मक) हैं। मन, दश इन्द्रिय और पञ्च महाभूत विकृति (कार्य) हैं। इस प्रकार एक प्रकृति, सात प्रकृति - विकृति तथा सोलह विकृतिके योगसे अचित् पदार्थोंकी सङ्ख्या चौबीस सिद्ध होती है। पुरुष पचीसवाँ तत्त्व सिद्ध होता है।

वेदान्तप्रस्थानमें पुरुष कार्यकारणातीत अधिष्ठानात्मक विवर्तोपादान है। प्रकृति केवल प्रकृति (कारण) अर्थात् परिणामोपादान है। महत्,

अहम् और पञ्च तन्मात्रात्मक अपञ्चीकृत पञ्च महाभूत प्रकृति - विकृति (कारण - कार्य उभयात्मक) हैं। अहं - गर्भित बुद्धि, मन, दश इन्द्रिय, प्राण और पञ्च महाभूत विकृति (कार्य) हैं। इस प्रकार एक प्रकृति, पाँच प्रकृति - विकृति, अट्ठारह विकृतिके योगसे अचित् पदार्थोंकी सङ्ख्या चौबीस सिद्ध होती है। पुरुष पचीसवाँ तत्त्व सिद्ध होता है।

यद्यपि आकाशादि पञ्च स्थूल भूत साङ्ख्य तथा वेदान्तसम्मत विकृतिकोटिके पदार्थ हैं, तथापि स्थावर - जङ्गम प्राणियोंके शरीरसहित ब्रह्माण्डरूप अतत्त्वान्तर परिणामके उपादान हैं। ऐसी स्थितिमें उभयसम्मत प्रकृतिसहित परिणामोपादान ग्यारह सिद्ध होते हैं। अतत्त्व संज्ञक पुरुष बारहवाँ तत्त्व है।

गणितजगत् में १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ संज्ञक नौ अङ्क हैं। दशवाँ अतत्त्वसंज्ञक शून्यतत्त्व है। १० न तो शून्य है, न एक ही; न दोनोंका योग या ऋण ही। दश शून्य और एकका समवेतस्वरूप है। उसकी अभिव्यक्ति गणितमें नौके

बाद दशवें स्थानपर, उसी प्रकार होती है, जिस प्रकार अक्षराम्नायमें विसर्गबीज अक्षरमूल अनुस्वारात्मक बिन्दुकी अभिव्यक्ति अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ऐ, ओ और औके बाद दशवें स्थानपर असे संलग्न अंकेरूपमें होती है। दशको अङ्क मानते ही एकके तुल्य शून्यको अङ्क माननेकी बाध्यता सिद्ध होती है। शून्य न तो एक है, न एकसे अधिक। अतएव एकसे निर्विशेष अवश्य है। अतः शून्य एकसे पूर्व अवश्य है। इस प्रकार शून्यसहित दशपर्यन्त ग्यारह सङ्ख्याकी सिद्धि होती है। शून्य पुरुषतुल्य है। एकसे दशपर्यन्त सूक्ष्म - स्थूल द्विविध आकाशादि दशभूततुल्य हैं। शून्य और एकके मध्यमें स्थित शून्याश्रिता अनुमानैकगोचरा शक्ति प्रकृतिस्वरूपा मायातुल्या है। उससे संश्लिष्ट शून्य सविशेष सर्वेश्वरसदृश एक है। सर्वेश्वरतुल्य उस एकसे आकाशतुल्य एककी उत्पत्ति होती है। ० + १ = १ के सुसमीक्षणसे यह तथ्य व्यक्त होता है। इस प्रकार वेदान्तदर्शनके तुल्य ही गणितजगत्में भी उपादानात्मक

बारह तत्त्वोंकी सिद्धि होती है। ११ से सहस्रपरार्द्ध या असङ्ख्यपर्यन्त इनका विलास या विवर्त सिद्ध होता है।

उक्त रीतिसे विवक्षावशात् परम भावरूप पुरुषसंज्ञक आत्माके लिए भी निस्तत्त्व और अनीश्वर शब्दोंका प्रयोग शास्त्रोंमें सुलभ है। ऐसी स्थितिमें अङ्काधार शून्यको शून्य कहनेपर भी शून्यकी भावरूपता ही चरितार्थ है।

४. शून्यकी अङ्काश्रयता - १० एक और शून्यका युग्मरूप है। प्रश्न उठता है कि एक दससे नौवें स्थान पूर्व स्थित है। परन्तु एकसे नौतक शून्यकी अप्राप्ति शून्यके स्वस्थानका अनुसन्धान करनेके लिए बाध्य करती है। पूर्वोक्त रीतिसे शून्यकी एकसे पूर्वरूपता चरितार्थ है।

∵ १ + १ = २ होता है,

∴ २ से १ एक स्थान पूर्व होता है। इसी शैलीमें -

∵ १ + ० = १ या ० + १ = ० होता है

∴ १ से ० एक स्थान न्यून होता है।

उक्त रीतिसे ०से १०, १०से २०, २०से ३०, ३०से ४०, ४०से ५०, ५०से ६०, ६०से ७०, ७०से ८०, ८० से ९०, ९०से १०० दशवें स्थानपर स्थित हैं। अतएव शून्य दशवें स्थानपर शून्य होता है, यह नियम चरितार्थ है। दशवें स्थानपर शून्यकी शून्यरूपतारूप चमत्कृतिके कारण ही दशमलवपद्धतिको दशमलवपद्धति कहते हैं।

यदि एकसे गणनाका प्रारम्भ मानें तो १०से २०, २०से ३०, ३०से ४०, ४०से ५०, ५०से ६०, ६०से ७०, ७०से ८०, ८० से ९० और ९०से १०० दशवें स्थानपर स्थित हों तथा १से १० नौवें स्थानपर स्थित हो। उक्त विगानके परिहारके लिए शून्यसे गणनाका शुभारम्भ आवश्यक है। गणितके पूर्वाचार्योंको यह तथ्य अवश्य ही विदित था। कारण यह है कि १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९ लिखने पर दायीं ओर क्रमशः ०, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८

और ९की प्राप्ति होती है।

शून्यको प्रथमाङ्क मानकर अङ्कधर और उसकी प्रामाणिकता

०	१०	२०	३०	४०	५०	६०	७०	८०	९०	१००
१	११	२१	३१	४१	५१	६१	७१	८१	९१	१०१
२	१२	२२	३२	४२	५२	६२	७२	८२	९२	१०२
३	१३	२३	३३	४३	५३	६३	७३	८३	९३	१०३
४	१४	२४	३४	४४	५४	६४	७४	८४	९४	१०४
५	१५	२५	३५	४५	५५	६५	७५	८५	९५	१०५
६	१६	२६	३६	४६	५६	६६	७६	८६	९६	१०६
७	१७	२७	३७	४७	५७	६७	७७	८७	९७	१०७
८	१८	२८	३८	४८	५८	६८	७८	८८	९८	१०८
९	१९	२९	३९	४९	५९	६९	७९	८९	९९	१०९

उक्त गणनाक्रमकी प्रामाणिकता और वैज्ञानिकता अर्थात् विशेषता इस प्रकार है -

(१) ऊपरसे नीचे प्रथम पङ्क्तिमें सर्व प्रथम एक अङ्ककी सबसे छोटी सङ्ख्या ० तथा अन्तमें एक अङ्ककी सबसे बड़ी सङ्ख्या ९ है। दूसरी पङ्क्तिका प्रथमाङ्क दो अङ्कोंकी सबसे छोटी सङ्ख्या १० है। दशवीं पङ्क्तिके अन्तमें दो अङ्कोंकी सबसे बड़ी सङ्ख्या ९९ है।

(२) दूसरीसे ग्यारहवीं पङ्क्तिके प्रारम्भमें क्रमशः १०, २०, ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८०, ९०, १०० और अन्तमें क्रमशः १९, २९, ३९, ४९, ५९, ६९, ७९, ८९, ९९, १०९ है। १०, २०, ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८०, ९०, १०० में इकाईके स्थानपर स्थित ० क्रमशः १९, २९, ३९, ४९, ५९, ६९, ७९, ८९, ९९, १०९में इकाईके स्थानपर ९ परिलक्षित होता है। इससे शून्यका पर्यवसान ९ है, यह तथ्य सुगमतापूर्वक समझमें आता है। अतएव शून्यसे गणनाके प्रारम्भ

का औचित्य समझमें आता है। ९ + ९ = १० होता है। १०में ९के स्थानपर ९ और + ९के स्थानपर ० स्पष्ट परिलक्षित होता है।

केवल शून्य और सङ्ख्यागत शून्यका मानाधिनियम

० × ० = ० ही केवल शून्यका मान है।

एकादि सङ्ख्यागत शून्यका मान शून्यसङ्ख्याके अनुरूप ९ × एकादि अङ्क है। उदाहरणार्थ १० गत शून्यका मान ९ × १ = ९ है। २० गत शून्यका मान ९ × २ = १८ है। ५० गत शून्यका मान ९ × ५ = ४५ है। १०० गत शून्यका मान ९९ × १ = ९९ है। १००० गत शून्यका मान ९९९ × १ = ९९९ है।

इकाई, दहाई, सैकड़ामें पूर्ण होनेवाली सङ्ख्यामें केवल इकाईके स्थानपर शून्य हो, तब इकाईके स्थानपर ९ रखकर शेष सङ्ख्यामें ९से गुणनके बाद शेष सङ्ख्याके जोड़से मेयाङ्ककी प्राप्ति होती है। उदाहरणार्थ -

(१) २५० मेयाङ्क है। इसमें इकाईके स्थानपर ० है। अतएव इकाईके स्थानपर प्राप्त ९को दहाई और सैकड़ा स्थानापन्न शेष २५से ९का गुणन करनेपर २२५की प्राप्ति हुई। २२५में २५ जोड़नेपर २५० मेयाङ्ककी उपलब्धि हुई।

(२) ३७० मेयाङ्क है। इसमें इकाईके स्थानपर ० है। अतएव इकाईके स्थानपर प्राप्त ९को दहाई और सैकड़ा स्थानापन्न शेष ३७से ९का गुणन करनेपर ३३३की प्राप्ति हुई। ३३३में ३७ जोड़नेपर ३७० मेयाङ्ककी उपलब्धि हुई।

इकाई, दहाई, सैकड़ामें पूर्ण होनेवाली सङ्ख्यामें केवल दहाई या इकाई और दहाईके स्थानपर शून्य हो, तब इकाई और दहाईके स्थानपर ९९ रखकर शेष सैकड़ा स्थानीय सङ्ख्यामें ९९से गुणनके पश्चात् मेयाङ्कोंके परस्पर योगका योग मेयाङ्क होता है। उदाहरणार्थ -

(१) ५०५ मेयाङ्क है। इसमें इकाईके स्थानपर ० है। अतएव इकाई और दहाईके स्थानपर प्राप्त ९९को सैकड़ा स्थानापन्न ५से गुणन करनेपर ४९५की प्राप्ति हुई। गुणनफल ४९५में ५ + ० + ५ = १० जोड़नेपर ५०५ मेयाङ्ककी उपलब्धि हुई।

(२) ५०० मेयाङ्क है। इसमें इकाई और दहाईके स्थानपर ० है। अतएव इकाई और दहाईके स्थानपर प्राप्त ९९को सैकड़ा स्थानापन्न ५से गुणन करनेपर ४९५की प्राप्ति हुई। गुणनफल ४९५में५ + ० + ० = ५ जोड़नेपर ५०० मेयाङ्ककी उपलब्धि हुई।

सहस्रपर्यन्त सङ्ख्यामें यदि केवल सैकड़ाके स्थानपर शून्य हो, तब इकाई, दहाई और सैकड़ाके स्थानपर ९९९लिखकर शेष सहस्रस्थानीय सङ्ख्यासे ९९९ का गुणन करना चाहिए। तत्पश्चात् मेयाङ्कगत इकाई और दहाईवाली सङ्ख्यामें सहस्रके स्थानपर स्थित सङ्ख्यासे योगको प्राप्त गुणनफलमें

योग करनेपर मेयाङ्क उपलब्ध होता है। उदाहरणार्थ-

(१) ५०३३ मेयाङ्क है। इसमें सैकड़ा स्थानपर ० है। अतएव इकाई, दहाई और सैकड़ाके स्थानपर प्राप्त ९९९को सहस्र स्थानापन्न ५से गुणन करनेपर ४९९५की प्राप्ति हुई। इकाई और दहाईके स्थानापन्न ३३ में सहस्र स्थानापन्न ५ जोड़नेपर ३८की उपलब्धि हुई। प्राप्त गुणनफल ४९९५में ३८का योग करनेपर मेयाङ्क ५०३३की प्राप्ति हुई।

(२) ७०२५ मेयाङ्क है। इसमें सैकड़ा स्थानपर ० है। अतएव इकाई, दहाई और सैकड़ाके स्थानपर प्राप्त ९९९को सहस्र स्थानापन्न ७से गुणन करनेपर ६९९३की प्राप्ति हुई। इकाई और दहाईके स्थानापन्न २५ में सहस्र स्थानापन्न ७ जोड़नेपर ३२की उपलब्धि हुई। प्राप्त गुणनफल ६९९३में ३२का योग करनेपर मेयाङ्क ७०२५की प्राप्ति हुई।

उक्त सरणीका अनुगमनकर अन्य स्थल

पर स्थित शून्यका मान निकाला जा सकता है तथा संलग्न सङ्ख्याको प्राप्त किया जा सकता है।

ध्यान रहे, १ − १ = ०, २ − २ = ०, ३ − ३ = ०, ४ − ४ = ० आदि स्थलोंमें ० अभावका सूचक माना जाता है। परन्तु इससे जिस विचित्र रहस्यकी प्राप्ति होती है, उसपर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है। **किसी भी सङ्ख्यासे उसीका ऋण करनेपर प्राप्त शून्य इस रहस्यको सिद्ध करता है कि उस सङ्ख्यासे केवल शून्य उतने ही स्थान पूर्व है। इस प्रकार एकसे एक स्थान पूर्व, दोसे दो स्थान पूर्व, तीनसे तीन स्थान पूर्व, चारसे चार स्थान पूर्व शून्य स्थित है। अभिप्राय यह है कि शून्य प्रथमाङ्क है।**

इस प्रकार, शून्यसे गणनाका प्रारम्भ होना, सिद्ध है।

निष्कर्ष-(१) उक्त रीतिसे यह तथ्य सिद्ध है कि गणितजगत्में शून्यकी प्रसिद्धि अभावरूपमें होनेपर भी वह निस्तत्त्व और अनीश्वर नहीं है।

उसकी निस्तत्त्वता और अनीश्वरताका तात्पर्य साङ्ख्योक्त पुरुषतुल्य उसके परिणाम, परिणामित्व और कर्तृत्वका प्रतिषेधमात्र है।

(२) साङ्ख्यदर्शन पुरुष, प्रकृति और प्राकृत कहनेपर सन्निहित होता है। वेदान्तदर्शन ब्रह्म, शक्ति, सर्वेश्वर और विलास या विवर्त कहनेपर चरितार्थ होता है। गणितदर्शन शून्य, शक्ति, सविशेष और विलास या विवर्त कहनेपर गतार्थ होता है। शून्य ब्रह्मकल्प (ब्रह्मका प्रतीक) निर्विशेष पदार्थ है। शून्याश्रिता शक्ति (शून्यशक्ति) मायातुल्य है। ब्रह्म और मायाके युग्मरूप बीजात्मक सविशेष सर्वेश्वरसदृश अनभिव्यक्त एक है। शून्य और शक्तिके समवेतस्वरूप बीजात्मक एकसे व्यक्त एक आकाशकल्प है। २से १०पर्यन्त वायु आदि शेष अङ्क सूक्ष्म और स्थूल भूतकल्प हैं। ग्यारहसे असङ्ख्यपर्यन्त उनके विलास हैं। शून्य सर्वाश्रय सर्वोपादान सर्वाधिष्ठान है।

५.शून्यकी अङ्कमूलता-

सूत्र - न भावाज्जायते भावो भावोऽभावान्न जायते।
नाभावाज्जायतेऽभावोऽभावो भावान्न जायते।।
(बौद्धधर्मदर्शन पृ. ५४८)

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।।
(श्रीमद्भगवद्गीता २.१६)

नास्त्यसद्धेतुकमत्सदसद्धेतुकं तथा।
सच्च सद्धेतुकं नास्ति सद्धेतुकमसत्कुतः।।
(माण्डूक्यकारिका ४.४०)

सूत्रार्थः- "भावपदार्थकी उत्पत्ति भावसे या अभावसे सम्भव नहीं। अभावकी उत्पत्ति भी भाव या अभावसे सम्भव नहीं।।"

"असत्का तात्त्विक भाव (अस्तित्व) और सत्का वास्तव विनाश भी सम्भव नहीं। तत्त्वदर्शियोंसे उक्त रहस्य गुप्त नहीं।।"

"असत्का कारण असत् नहीं तथा सत्का कारण असत् नहीं। सत्का कारण सत् नहीं और असत्का कारण सत् नहीं।।"

व्याख्या - वेदान्तप्रस्थानमें ब्रह्मात्मतत्त्व परम भावरूप है। उसके समाश्रित मायाशक्ति सत्, असत् और उभयविलक्षण अनिर्वचनीया है। उससे अनिर्वचनीय कार्यप्रपञ्चकी उत्पत्ति होती है। आकाशादि कार्यप्रपञ्चकी प्रयोजनसाधकता अर्थात् अर्थक्रियाकारिता इसे असत् नहीं सिद्ध होने देती। इसकी नश्वरता इसे सत् नहीं सिद्ध होने देती। सदसत्की तत्त्वराज्यमें गति नहीं होती। अतएव कार्यवर्गकी अनिर्वचनीयता सिद्ध होती है। ब्रह्माश्रिता मायाशक्तिकी पृथक् गणना अर्थात् सत्ता नहीं होती। ब्रह्मात्मविज्ञानसे उसका विरोध और बाध भी परिलक्षित होता है। वह स्फोटादि कार्योंसे वह्निनिष्ठ दाहिकाशक्तिके सदृश कार्यानुमेया है। अतएव ब्रह्मतुल्य वह परम भावरूप सिद्ध हो, ऐसा सम्भव नहीं। उसकी मोहकता, सदृश - विसदृश कार्याकारेण सन्नद्धता, उसे बन्ध्यापुत्रादिवत् असत् सिद्ध नहीं होने देती।

कार्यकारणकी अनिर्वचनीयता परब्रह्मकी

अद्वितीयतामें हेतु है। अभिप्राय यह है कि शक्ति और शक्तिकार्योंकी अनिर्वचनीयता शक्त (शक्तिमान्) की अद्वितीयतामें हेतु है। कोई भी शक्तिमान् शक्ति या शक्तिके विविध विलासोंकी विद्यमानतामें भी सद्वितीय नहीं होता। -

"निस्तत्त्वा कार्यगम्याऽस्य शक्तिर्मायाग्निशक्तिवत्।
न हि शक्तिः क्वचित्कैश्चिद्बुध्यते कार्यतः पुरा॥
न सद्वस्तु सतः शक्तिर्न हि वह्नेः स्वशक्तिता।
सद्विलक्षणतायां तु शक्तेः किं तत्त्वमुच्यताम्॥
सर्वथा शक्तिमात्रस्य न पृथग्गणना क्वचित्।
शक्तिकार्यं तु नैवास्ति द्वितीयं शङ्क्यते कथम्॥

(पञ्चदशी २.४७,४८,५३)"

ध्यान रहे, आकाशादि कार्य कारणकी अपेक्षा सविशेष परिलक्षित होते हैं। शब्दगुणसम्पन्न आकाशकी अपेक्षा शब्दस्पर्शगुणसम्पन्न वायु सविशेष है। शब्दस्पर्शगुणसम्पन्न वायुकी अपेक्षा शब्दस्पर्शरूपगुणसम्पन्न तेज सविशेष है। शब्दस्पर्शरूपगुणसम्पन्न तेजकी अपेक्षा शब्दस्पर्शरूपरसगुणसम्पन्न जल सविशेष है। शब्द

-स्पर्शरूपरसगुणसम्पन्न जलकी अपेक्षा शब्दस्पर्शरूपरसगन्धगुणसम्पन्न पृथिवी सविशेष है।

गणितजगत्में शून्य निर्विशेषताकी अवधि है। शून्यकी अपेक्षा एक सविशेष है। कारण यह है कि ० + १ = १ होता है। एककी अपेक्षा दो, दोकी अपेक्षा तीन एक - एक अधिक है। यह क्रम असङ्ख्यतक परिलक्षित हो सकता है। सविशेषताकी अवधि असङ्ख्य और निर्विशेषताकी अवधि अनन्तसंज्ञक शून्य है।

दर्शनभूमिमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धयुक्त पृथ्वी सविशेषताकी चरम अवधि है। उसके तारतम्यज सङ्घात पुष्पादि भी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धयुक्त ही हैं। परन्तु गणितजगत्का दर्शन विलक्षण है। इसमें शून्यसे असङ्ख्यतक पूर्वकी अपेक्षा उत्तर अङ्कमें एककी अधिकता सम्भावित है। फिर भी ० और १ की पुनरावृत्ति क्रमशः १से १०, १०से २०, २०से ३०, ३०से ४० आदि स्थलोंमें परिलक्षित है।

इस प्रकार गणित वह अनुपम दर्शन है, जिसमें विशेषताकी वृद्धिका क्रम एकसे असङ्ख्यतक चरितार्थ है। एककी दो आदिमें अनुगतता और उपादानरूपवा सिद्ध है। परन्तु एककी आकाशतुल्य सापेक्ष निर्विशेषता ही सिद्ध है, न कि निरपेक्ष। अतएव आकाशबीज आत्मशक्ति माया (अव्यक्त) के तुल्य एककी बीजावस्थाकी कल्पना स्वाभाविक है। परन्तु यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि बीज सविशेषकी मूलावस्था ही मान्य है, न कि सर्वथा निर्विशेष। अङ्कुरोत्पादिनी शक्तिके बिना बीज पृथिव्यादि उपादानरूप ही शेष रहता है। अतएव एकादिकी बीजावस्थाका आश्रय शून्य है।

एककी बीजावस्थाका अनुल्लेख और शून्यकी भावरूपताका अपरिज्ञान गणितके पूर्णविकासमें अवरोधक हेतु हैं। तन्त्रालोक और वाक्यपदीयम् आदि ग्रन्थोंमें बैखरी वाणीके अन्तर्गत अङ्काम्नायका अन्तर्भाव माननेके कारण पृथक्से अङ्कगणितका चित्रण नहीं है। दर्शनशास्त्रोंमें एकादिको वस्तुनिष्ठ सङ्ख्या मानकर अङ्कशास्त्रका विस्तृत विवेचन नहीं है।

"भव्यं कर्म, भूतं द्रव्यम्" (शावरभाष्य) के अनुसार भव्य (कर्म) और भूत (द्रव्य) की प्रधानताके कारण मीमांसाका प्रधान प्रतिपाद्य गणित नहीं हो सका। ब्रह्म, आत्मा, प्रकृति, आकाशादि भूत, हेय (दुःख), हेयहेतु, (द्रष्टा और दृश्यका आविद्यक संयोग), हान (दुःखोंकी आत्यन्तिकी निवृत्ति), हानोपाय (मोक्षोपाय), बन्ध, मोक्ष, प्रमाण, प्रमेयादिके प्रतिपादनमें संलग्न अन्य दर्शनोंका स्वतन्त्र प्रतिपाद्य गणित नहीं हो सका। अर्थशास्त्रका उपजीव्य (कारण) होनेके कारण भी मोक्षनिष्ठ अध्यात्मजगत्में गणित उपेक्षित रहा। एकादिसे असंलग्न शून्य अभावात्मक मान लिये जानेके कारण तथा दार्शनिकदृष्टिकोणकी अनभिज्ञताके कारण गणितज्ञों द्वारा भी गणितका दार्शनिक विश्लेषण सम्भव न हो सका।

'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' (ऋक् १.१६४.४६), 'एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति' (कठोपनिषत् २.२.१२), 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' (छान्दोग्योपनिषत् ६.२.१),

'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किञ्चनमिषत्' (ऐतरेयोपनिषत् १.१) आदि वचनोंके सम्यक् अनुशीलनसे गणितका दार्शनिक विश्लेषण सुलभ हो सकता है। शास्त्रवित् पञ्चदशीकारने आसीत्को सत्तावाचक मानकर 'कर्तव्यं कुरुते', वाक्यं ब्रूते', 'धार्यस्य धारणम्', 'राहोः शिरः' के तुल्य अभेदमें भेदोपचार माना है। -

"सदासीदिति शब्दार्थभेदे वैगुण्यमापतेत्।
अभेदे पुनरुक्तिः स्यान्मैवं लोके तथेक्षणात्।।"
(पञ्चदशी २.३६)

आसीत्के तुल्य ही एककी सद्रूपता स्वीकार करनेपर एककी महत्ता सिद्ध हो सकती है।

गणितको मोक्षपर्यवसायी दर्शनशास्त्र सिद्ध करनेके लिए शास्त्रीय पक्ष इस प्रकार है। -

"एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्।।"
(ब्रह्मबिन्दूपनिषत् १२, त्रिपुरातापिन्यु० १२)

"भूतात्मा एक होता हुआ ही प्रत्येक भूतमें विद्यमान है। वह नभचन्द्रके तुल्य एक होता हुआ

भी जलचन्द्रसदृश विविधरूपोंमें दृष्टिगोचर होता है।।"

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा
एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्।।
(कठोपनिषत् २.२.१२)

"जो एक, सबको अपने अधीन रखनेवाला, सम्पूर्ण भूतोंका अन्तरात्मा है, अपने एकरूपको ही विविधरूपोंमें व्यक्त करनेवाला है। अपनी बुद्धिमें स्थित उस आत्मदेवको जो देखते हैं, उन्हींको नित्य सुख प्राप्त होता है, न कि अन्योंको।।"

अब प्रश्न उठता है कि निर्बीज एक स्वयंको जिस एकके द्वारसे विविधरूपोंमें व्यक्त करता है, वह एक कौन है ? उस बीजात्मक एकको निर्बीज और कार्यात्मक एकसे विविक्त दर्शानेके लिए उसे एकके अतिरिक्त किन नामोंसे अभिहित करना आवश्यक है?

उत्तर है, वेदान्तमें उसे माया या प्रकृति कहा जाता है। वह महाप्रलयकी दशामें स्वप्रकाश पुरुषके समाश्रित पुरुषतुल्य एक रहती है। सर्गदशामें कार्यरूपमें परिणत होती है तथा पुरुष कार्याकार परिलक्षित होता है। अभिप्राय यह है कि परमात्मस्वरूप पुरुष कार्यप्रपञ्चका विवर्तोपादान है और प्रकृति परिणामोपादान है। पुरुषाधिष्ठित और प्रेरित प्रसवात्मिका प्रकृति विविधरूपोंमें परिणत होती है। अर्थतत्त्वके मनीषियोंको इन तथ्योंका ज्ञान अवश्य होना चाहिए -

"एकत्वं च बहुत्वं च प्रकृतेरर्थतत्त्ववान्।
एकत्वं प्रलये चास्य बहुत्वं च प्रवर्तनात्।।
बह्वधाऽऽत्मा प्रकुर्वीत प्रकृतिं प्रसवात्मिकाम्।"
(महाभारतशान्तिपर्व ३०६.३५,३६)।

प्रकृतिको ही माया, अविद्या, शक्ति, अव्यक्तादि नामोंसे अभिहित करते हैं। "मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्" (श्वेताश्वतरोपनिषत् ४.१०), "प्रकृतिर्माया पुरुषः शिवः" (गणेशपूर्वतापिनीयोपनिषत् २.३), "अविद्या मूलप्रकृतिर्माया लोहितशुक्लकृष्णा" (शाण्डिल्यो-

पनिषत् ३.१), "ब्रह्मशक्तिरेवप्रकृतिः" (निरालम्बोपनिषत्), 'अविद्यामाहुरव्यक्तम्' (महाभारत-शान्तिपर्व ३०७.२)।

उक्त दार्शनिक तथ्यके अनुरूप ही गणित जगत्में एकसंज्ञक परमात्मस्वरूप पुरुषके तुल्य शून्य है, जो कि निर्विशेष एक है। प्रकृतिसंज्ञक एकके तुल्य उसके समाश्रित अङ्कोपदानभूत बीजात्मक एक है, जो कि पराशक्ति या शून्यशक्ति कहने योग्य है। उन दोनोंके योगसे आकाशतुल्य कार्यात्मक एककी उत्पत्ति होती है।

इस प्रकार, विवर्तोपादानभूत कारणातीत एक, परिणामोपादानभूत बीजात्मक एक और कार्यात्मक एकका दार्शनिक दृष्टिकोणसे चित्रण पूर्ण हुआ। विवर्तोपादानभूत एक निर्विशेष एक है। पुनरुक्तिवारणके लिए उसीको शून्य कहा गया है। कार्यानुमेया होनेसे गणितजगत्में उसका अनुल्लेख है।

अब प्रश्न उठता है कि पुनरुक्तिवारणकी दृष्टिसे निर्विशेष एकको शून्य कहना सर्वाधिक

समीचीन है; परन्तु यह तो उसी प्रकारका उपहास है, जिस प्रकार साङ्ख्योक्त पुरुष तत्त्वको निस्तत्त्व मानना।

परन्तु विवक्षावशात् परस्पर विरुद्धशैलीमें भी वस्तुप्रतिपादन अनादिपरम्परा प्राप्त है। साङ्ख्यपक्षमें वस्तुप्रतिपादकी दो विधा अनादि परम्पराप्राप्त है। महदादि चौबीस अचित् वस्तुओंके सहित चिद्रूप पुरुषको तत्त्व कहनेकी प्रथम प्रक्रिया है। महदादिको तत्त्व और पुरुषको अतत्त्व कहनेकी द्वितीय प्रक्रिया है। -

"पञ्चविंशतिसर्गं तु तत्त्वमाहुर्मनीषिणः।।
निस्तत्त्वं पञ्चविंशस्य परमाहुर्निदर्शनम्।"
(महाभारतशान्तिपर्व ३०५.३८.५)

जैसे निस्तत्त्व कहनेपर भी पुरुषकी अभावरूपता नहीं सिद्ध होती, वैसे ही शून्य कहनेपर भी अङ्काधिष्ठानकी अभावरूपता नहीं सिद्ध होती। शून्य सर्वत्र अभावार्थक ही मान्य हो,

ऐसा नहीं। रिक्त, हृदय, चितवन, निर्जन, विविक्त, अविद्यमान, निरुत्साह, दया, ज्ञान, तटस्थ, निर्दोष, निरर्थक, विवस्त्र, आकाश, अन्तरिक्ष, बिन्दु, पूर्ण, असीम, नरकुल, अन्यमनस्क, निःसन्देहादि विविध अर्थोंमें शून्यका प्रयोग दृष्टिगोचर है।

अभाववाचक शून्य विश्वविदित है। **"अतएव द्वितीयत्वं शून्यवन्न हि गण्यते"** (पञ्चदशी २.५१), **"अशून्यं शून्यमित्याहुः शून्यञ्चाभाव उच्यते। अभावः शून्यं विज्ञेयो यत्र भावः लयङ्गतः।।"** (बौद्धदर्शन) आदि स्थलोंमें अभावार्थक शून्यका प्रयोग है।

बौद्धागमके अनुसार लोकदृष्टि अविद्याच्छन्न है। उसके निराकरणके लिए क्रमिक सत्यका प्रकाश आवश्यक है। लोकदृष्टिका अपवादकर अशेष प्रपञ्चका उपशम शून्यका अर्थ है। सर्वथा अभाववाचक शून्य नहीं है। शाखाचन्द्रन्यायसे लोकसंवृतिका अनुगमनकर

निःस्वभाव परमार्थ सत्योन्मुख लोकसत्यके प्रस्थापनसे लोकदृष्टिका अपहरण और परमार्थ सत्यका अवतरण तथागतसिद्धान्त है। लोकदर्शनका आश्रय लिये बिना शून्यदर्शनका आलम्बन दुर्गृहीत सर्प या दुष्प्रसाधित विद्याके तुल्य घातक है। जिस स्वभावका तथागत होता है, उसी स्वभावका यह जगत् भी होता है। जब तथागत भाव, अभाव, उभय, अनुभवसे विलक्षण, अतएव निःस्वभाव है, तब उसे शून्य, अशून्य, शून्याशून्य (उभय) और न शून्य, न अशून्य (अनुभय) मानना भी प्रमाद है। परन्तु उक्त वादको आत्मसात् करनेके लिए उसे शून्यवादसे अभिहित करनेकी प्रथा सर्वथा युक्त है। प्रतीत्यसमुत्पाद (हेतुफलपरम्परापरिज्ञान), शून्यता, उपादाय-प्रज्ञप्ति, प्रतिपत्, मध्यमा समानार्थक हैं। "हेतुप्रत्ययापेक्षो भावानामुत्पादः प्रतीत्यसमुत्पादः" (माध्य. शा.) - दुःखमूल जन्म, धर्माधर्म, प्रवृत्ति, तृष्णा, संस्कार और अविद्या तथा फलमूल पुष्प, नाल, पत्र, अङ्कुर, बीजादि परम्परापरिबोध प्रतीत्य-

समुत्पाद है। अर्थात् कारणकार्यभावरूप धर्मावगति प्रतीत्यसमुत्पाद है। यह हेतुप्रत्ययापेक्ष भावोत्पादरूप है। प्रधान और सहायक हेतुओंसे अथवा प्रत्येक कारणरूप हेतु और कारणसमुदाय-रूप प्रत्ययसे निष्पन्न कार्यका अवबोधक है।

द्वे सत्ये समुपाश्रित्य बुद्धानां धर्मदेशना।
लोकसंवृतिसत्यं च सत्यं च परमार्थतः।।
(म० का० २४.८)

शून्यमिति न वक्तव्यमशून्यमिति वा भवेत्।
उभयं नोभयं चेति प्रज्ञप्त्यर्थं तु कथ्यते।।
तथागतो यत्स्वभावस्तत्स्वभावमिदं जगत्।
तथागतो निःस्वभावो निःस्वभावमिदं जगत्।।
(म० का० २२.११,६)

व्यवहारमनाश्रित्य परमार्थो न देश्यते।
परमार्थमनागम्य निर्वाणं नाधिगम्यते।।
विनाशयति दुर्दृष्टा शून्यतामन्दमेधसम्।
सर्पो वा दुर्गृहीतो विद्या वा दुष्प्रसाधिता।।
यः प्रतीत्यसमुत्पादः शून्यतां तां प्रचक्षते।
सा प्रज्ञप्तिरुपादाय प्रतिपत्सैव मध्यमा।।"
(म० का० २४. १०,११,१८)

वेदान्तप्रस्थानके अनुसार वस्तुस्थिति यह है कि 'एको वशी' (कठोपनिषत् २.२.१२) में चरम तत्त्वको एक और वशी (सर्वेश्वर) कहा गया है। 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' (छान्दोग्योपनिषत् ६.२.१) में उस सत्तत्त्वको स्वगत (स्वांशरूपभेदसम्पन्न), सजातीय (सदृश), विजातीय (विसदृश) - भेदशून्य कहा गया है। अभिप्राय यह है कि सजातीय, विजातीय, स्वगतभेदशून्य एक निर्विशेषताकी अवधि होनेसे गणितजगत्में शून्यतुल्य शून्य कहा गया है। कारणात्मक सविशेष शून्य बीजात्मक एक है। कार्यात्मक सविशेष शून्य गणित प्रसिद्ध एक है। देवनागरी लिपिमें १ लिखनेपर शिरोभागमें शून्यकी संलग्नता भी उक्त तथ्यका द्योतक है।

ध्यान रहे, शून्य और असत् बहुधा अभावार्थक होनेपर भी अनुदरा (स्वल्प उदरवाली) कन्याके तुल्य प्रसङ्गानुसार भावार्थक भी होता है। "शून्यतुलां दधतः" (श्रीमद्भागवत १०. ८७.

२९) में ब्रह्मको अभावात्मक शून्यरूप न कहकर शून्यतुल्य स्वीकार किया गया है। 'अतिशून्यो विमर्दश्च भेरीशब्दस्ततो भवेत्", 'महाशून्यं ततो याति सर्वसिद्धिसमाश्रयम्", (सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषत् ८, ९) 'प्रभाशून्यं मनःशून्यं बुद्धिशून्यं निरामयम्। सर्वशून्यं निराभासं समाधिरभिधीयते ।।' (सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषत् १८), 'नाभावो विद्यते सतः' (श्रीमद्भगवद्गीता २.१६) और 'कथमसतः सज्जायेत' (छान्दोग्योपनिषत् ६.२.१) में असत्को अभावार्थक (निषेधपरक) माना गया है। परन्तु 'असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत।' (तैत्तिरीयोपनिषत् २.७.१), में परम भावरूप कारणब्रह्मको असत् कहा गया है। 'नासतो विद्यते भावः' (श्रीमद्भगवद्गीता २.१६), 'असतो मा सद्गमय' (बृहदारण्यकोपनिषत् १. ३. २८) में अप्राप्तका प्रतिषेध न होनेके कारण अनात्मभूत नश्वर जगत्को असत् अर्थात् अनित्य कहा गया है।, 'न सत्तन्नासदुच्यते' (श्रीमद्भगवद्गीता १३.१२) में व्यक्तको सत् और अव्यक्तको असत् कहा गया

है। असत्के तुल्य ही शून्यका गणितमें बहुधा भावार्थक प्रयोग किया गया है। निर्विशेषतुल्य शून्यको अभावतुल्य माना गया है, न कि सर्वथा अभाव ही। इस प्रकार प्रसङ्गानुसार शून्यको भाव पदार्थ मानना आवश्यक है।

ध्यान रहे, उक्त तथ्य निर्विकल्प एकको शून्य और सविकल्प शून्यको एक मानकर व्यक्त किया गया है। दार्शनिक दृष्टिसे निर्विशेष ब्रह्मका द्योतक शून्य तथा सविशेष ब्रह्मका द्योतक (प्रतीक) एक है। अतएव अभावार्थक शून्यतुल्य शून्य है, न कि सर्वथा शून्यरूप अभाव ही।

जैसे जल स्वभावसिद्ध शैत्यके योगसे हिम होता है, वैसे ही शून्य स्वभावसिद्ध सर्वभवन-सामर्थ्यके योगसे एक होता है। एकका पूर्वरूप शून्य है और शून्यका पर (उत्तर) - रूप एक है। एकका नौ (९) तक स्वयोगसे विकास होता है। यथा १ + १ = २, २ + १ = ३, ३ + १ = ४, ४ + १ = ५, ५ + १ = ६, ६ + १ = ७, ७ + १ =

८, ८ + १ = ९, परन्तु ९ + १ = १० के तुल्य १० + १ = ११ आदिकी सिद्धि शून्यके योगसे ही सम्भव है। इस प्रकार ११, १२, १३, आदिकी सिद्धि जिस १० पर निर्भर है, उस १०की सिद्धि १ और ०के साहचर्यसे ही सम्भव है।

२ − १ = १, ३ − १ = २, ४ − २ = २, ४ − ३ = १ आदि स्थलोंके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि स्वयंसे न्यून सङ्ख्याका ऋण अपनेसे न्यून अर्थात् पूर्ववर्ती सङ्ख्याको अवशिष्ट रखता है। १ − २ = − १, २ − ३ = − १, ४ − ६ = − २, ५ − ३ = − २ आदि स्थलोंके अनुशीलन से यह तथ्य सिद्ध है कि अपनेसे अधिक सङ्ख्याका ऋण अपनेसे ऋणात्मक न्यून अर्थात् पूर्ववर्ती सङ्ख्याको ही अवशिष्ट रखता है। साथ ही १ − १ = ०, २ − २ = ०, ३ − ३ = ०, ४ − ४ = ०, ५ − ५ = ० आदि स्थलोंके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि स्वयंके सदृश अर्थात् स्वयंसे स्वयंका ऋण शून्यको ही अवशिष्ट

रखता है। अतएव शून्य एकादिसे पूर्व सङ्ख्या है। इस प्रकार ९के पश्चात् और एकके पूर्व ० की स्थिति शून्यको एकादिका आश्रय और एकादिरूप सिद्ध करती है। -

"यदुपादाय पूर्वस्तु भावो विकुरुतेऽपरम्।
आदिरन्तो यदा यस्य तत्सत्यमभिधीयते।।"

(श्रीमद्भागवत ११. २४.१८)

"जिसके आदि और अन्तमें जो है, वही मध्यमें भी है, वही सत्य है। विकार केवल व्यवहारके लिए की हुई कल्पनामात्र है। जैसे कङ्कण, कुण्डल आदि सोनेके विकार कार्य और घड़े - सकोरे आदि मिट्टीके विकार पहले सोना और मिट्टी ही होते हैं, बादमें भी सोना और मिट्टी ही होते हैं, अतः मध्यमें भी सोना और मिट्टी ही होते हैं।।"

"आदावन्तेऽपि च सत्त्वानां यद् ध्रुवं तदेवान्तरालेऽपि"

(श्रीमद्भागवत ६. १६. ३६)

"जो वस्तुओंके आदि और अन्तमें रहनेवाला

ध्रुवतत्त्व (परम सत्य) है। वही मध्यमें भी है।।"

जैसे पृथिवीसे युक्त बीजके विलास उच्छूनावस्थारूप अव्यक्त (अङ्कुरोत्पत्तिके पूर्व स्निग्ध बीजकी स्थूलावस्था) , अङ्कुर, नाल, काण्ड, शाखा, प्रशाखा, पल्लव, पुष्प और फल हैं, वैसे ही शून्ययुक्त एकके विलास दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ और दश हैं। अतएव बीजशक्तियुक्त शून्य एक है और निर्बीज (बीजशक्तिरहित) एक शून्य है। अभिप्राय यह है कि निर्विशेष एक शून्य है और सविशेष शून्य एक है।

∵ (क्यों कि) पृथिवी + संस्कारशक्ति = बीज है।
∴ (अतः) बीज − संस्कारशक्ति = पृथ्वी है।
तद्वत्, शून्य + संस्कारशक्ति = १ है।
अतएव, एक − संस्कारशक्ति = ० है।

ध्यान रहे, पृथिवी सन्निहित बीजपरम्पराका अन्त अगणित (असङ्ख्य) बीज होता है। अभिप्राय यह है कि पृथिवीसे संलग्न एक बीजसे अनेक बीजकी प्राप्ति होती है। पुनः पृथिवीसे

संलग्न अनेक बीजकी उत्तरोत्तर परम्परासे असङ्ख्य बीजकी प्राप्ति है। तद्वत् शून्यसे संलग्न एकका विकासोन्मुख अगणितरूप अर्थात् समीकरण असङ्ख्य है। अतएव असङ्ख्य अनेक है। असङ्ख्य (अगणित , अनेक) का बीजात्मक स्वरूप अर्थात् समाहार एक है। अतएव एक सविशेष है। सविशेष एकका निर्विशेषरूप शून्याख्य अनन्त है। वह कालकवलित न होनेसे सत्य है। अदृश्य होनेसे स्वप्रकाश चिद्रूप शिव है। सच्चित् होनेसे आत्मा है। आत्मा होनेसे परमप्रेमास्पद अर्थात् सुन्दर है। **सत्यं शिवं सुन्दरम्** गणितका गन्तव्य है।

निर्विकल्प ब्रह्मतुल्य शून्य है। स्वशक्ति त्रिगुणमयी प्रकृतिके योगसे ब्रह्मकी सर्वेश्वर संज्ञा है। सर्वेश्वर संज्ञक कारणब्रह्म कारणभूमिमें एक है। शब्दतन्मात्रात्मक अपञ्चीकृत (अन्य चार भूतोंके संसर्गसे रहित) आकाश कार्यभूमिमें एकके तुल्य है। स्पर्शतन्मात्रात्मक अपञ्चीकृत वायु दोके तुल्य है। रूपतन्मात्रात्मक अपञ्चीकृत तेज तीनके

तुल्य है। रसतन्मात्रात्मक अपञ्चीकृत जल चारके तुल्य है। गन्धतन्मात्रात्मिका अपञ्चीकृतपृथिवी पाँचके तुल्य है। अतीन्द्रिय शब्दादि तन्मात्राओंको अपञ्चीकृत पञ्चभूत कहते हैं। पञ्चीकृत (स्वयंका ½ और शेष चार भूतोंके १/८,१/८ भागसे निष्पन्न) आकाश छहके तुल्य है। पञ्चीकृत वायु सातके तुल्य है। पञ्चीकृत तेज आठके सदृश है। पञ्चीकृत जल नौके तुल्य है। पञ्चीकृत पृथिवी दशके सदृश है। अब प्रश्न उठता है कि एककी कौन - सी निर्विशेषावस्था शून्य है और शून्यकी कौन - सी सविशेषावस्था एक है? १− १ = ०, २− २ = ०, ३ − ३ = ०, ४ − ४ = ०रूप समीकरणके अवलोकनसे यह तथ्य सिद्ध है कि स्वका लोप शून्य है। ० − ० = ० अर्थात् "शून्यका लोप शून्य है", यह कथन उपचारमात्र सिद्ध होता है। क्यों कि ऐसा कहनेपर भी शून्यकी सिद्धि होती ही है। "अतएव स्वका लोप शून्य है", यह कथन शून्यसहित शून्यातिरिक्त पर चरितार्थ है। सविशेषके लोपसे उपलक्षित निर्विशेष

प्रकाश, प्रवृत्ति और निरोधका योग सविशेष है। प्रकाश सत्त्वगुण है। प्रवृत्ति रजोगुण है। निरोध या अवष्टम्भ तमोगुण है। सत्त्वगुण पालक है। रजोगुण उत्पादक है। तमोगुण संहारक है। त्रिगुणकी साम्यावस्था प्रकृति या माया है। एककी दोमें, दोकी तीनमें तथा तीनकी चारमें आदि क्रमसे एककी शून्यातिरिक्त सबमें अनुगति एककी प्रकाशरूपता है।

१ + १ = २, १ + १ + १ = ३ आदि १की अनुगतिके उदाहरण हैं। अभिप्राय यह है कि दोमें एक एक वार, तीनमें एक तीन वार अनुगत है। वृद्धि और ह्रास एककी क्रियाशीलता-रूपा प्रवृत्ति है। २, ३, ४ आदि रूपोंमें एककी वृद्धि और ½ तथा ¼ आदिरूपोंमें एकका ह्रास है। निरोध अदर्शन है। १/२, १/३, १/४, १/१०, १/१०० आदि स्थलोंमें एकका दर्शन सुलभ है, परन्तु २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ और ९ आदि स्थलोंमें एकका अदर्शन सुलभ है।

उपर्युक्त प्रकाश, प्रवृत्ति और निरोधरूप त्रिविध विशेषताशून्य एक शून्य है तथा तीनों विशेषताओंसे सम्पन्न शून्य एक है। शून्यकी एकादिमें अमुक वार अनुगति, उसकी वृद्धि, उसका ह्रास और निरोध असम्भव है। अभिप्राय यह है कि वृद्धि और ह्रासके विना प्रकाश तथा निरोध असङ्गत है। १००, १०००, १०००० आदि स्थलोंमें परिदृश्य शून्यमें वृद्धि प्रातीतिक है। कारण यह है कि ० × ० = ० और ० + ० = ० ही होता है। जब कि १ × १ = १ और १ + १ = २ होता है। २ × २ = ४ और २ + २ = ४ होता है।

६. अङ्कोंकी भोगापवर्गप्रदता -

दर्शनजगत्में तत्त्वोंकी सङ्ख्या सुनिश्चित है, परन्तु कार्योंकी इयत्ता अनिश्चित है। अभिप्राय यह है कि तत्त्वान्तरपरिणामरूप तत्त्व उत्तरोत्तर एककी विशेषतासे सम्पन्न होते हैं, जब कि तारतम्यज संघातरूप कार्य उक्त विशेषतासे असम्पन्न और अवान्तर विशेषतासे सम्पन्न होते हैं।

उदाहरणार्थ अन्तिम तत्त्व पृथिवी शब्दादि पञ्च गुणरूप विशेषताकी सीमामें निबद्ध है; परन्तु उसके विकार या विलासरूप तारतम्यज संघात की इयत्ता नहीं है। गणितजगत् में शून्यसे असङ्ख्यपर्यन्त क्रमशः एककी वृद्धि इसकी विशेषता है।

इस सन्दर्भमें १ + १ = २, २+ १ = ३, ३+ १ = ४ आदि युक्त उदाहरण हैं। परन्तु उत्तरोत्तर वृद्धिका यह क्रम असङ्ख्यपर्यन्त परिलक्षित होनेपर भी ० से ९ तककी आवृत्ति और अनुगति १०से १९, २०से २९, ३०से ३९ आदि स्थलोंमें सर्वत्र है। १ संलग्न ०, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ की क्रमशः १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९ संज्ञा है।

इस सन्दर्भमें यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अङ्कोंमें शून्यकी प्रथम अभिव्यक्ति १०में दृष्टिगोचर है। इस प्रकार, ० से ९ अथवा १से १०तककी सङ्ख्या मोक्षपुरुषार्थकी प्रधानतासे है और शेष सङ्ख्या अर्थपुरुषार्थकी प्रधानतासे है।

ध्यान दें, अङ्कमालिका (अङ्कधर, पहाड़ा)

में (०से १०९ तक) ० उत्तरवर्ती प्रत्येक दशवें स्थानपर शून्यरूपसे प्रतिष्ठित रहता है। ०, १०, २०, ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८०, ९०, १०० आदिके अवलोकनसे यह तथ्य स्पष्ट होता है। एक अपने नौवेंसे अट्ठारहवें स्थानपर दहाईके स्थानपर प्रतिष्ठित रहता है। यह तथ्य १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९ के अवलोकनसे सिद्ध है। दो अपने अट्ठारहवेंसे सत्ताईसवें स्थानतक दहाईके स्थानपर प्रतिष्ठित रहता है। यह तथ्य २०, २१, २२, २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९ के अवलोकनसे सिद्ध है। तीन अपने सत्ताईसवेंसे छत्तीसवें स्थानतक दहाईके स्थानपर प्रतिष्ठित रहता है। यह तथ्य ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९ के अवलोकनसे सिद्ध है। चार अपने छत्तीसवेंसे पैंतालीसवें स्थानतक दहाईके स्थानपर प्रतिष्ठित रहता है। यह तथ्य ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९के अवलोकनसे सिद्ध है।

पाँच पैंतालीसवेंसे चौवनवें स्थानतक दहाईके स्थानपर प्रतिष्ठित रहता है। यह तथ्य ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९ के अवलोकनसे सिद्ध है। छह अपने चौवनवें स्थानसे तिरेसठवें स्थानतक दहाईके स्थानपर प्रतिष्ठित रहता है। यह तथ्य ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९ के अवलोकनसे सिद्ध है। सात अपने तिरेसठवेंसे बहत्तरवें स्थानतक दहाईके स्थानपर प्रतिष्ठित रहता है। यह तथ्य ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९ के अनुशीलनसे सिद्ध है। आठ अपने बहत्तरवेंसे इक्यासीवें स्थानतक दहाईके स्थानपर प्रतिष्ठित रहता है। यह तथ्य ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९के अनुदर्शनसे सिद्ध है। नौ अपने इक्यासीवेंसे नब्बेवें स्थानतक दहाईके स्थानपर प्रतिष्ठित रहता है। यह तथ्य ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९ के समीक्षणसे सिद्ध है। दस अपने नब्बेसे निन्यानबेवें

स्थानतक दहाई और सैकड़ाके स्थानपर प्रतिष्ठित रहता है। यह तथ्य १००, १०१, १०२, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८, १०९ के अवलोकनसे सिद्ध है। इस प्रकार एकसे दशतकके अङ्क १ से १०९ तककी अङ्कमालिकामें क्रमशः दश स्थानोंतक अनुगत रहते हैं।

७. उपसंहार- यद्यपि अक्षराम्नायगत अक्षरोंके तुल्य अङ्काम्नायगत अङ्कोंकी अचिद्रूपता ही परिलक्षित होती है, परन्तु परब्रह्मपर्यवसायिनी परावाक्के तुल्य निर्विशेषताकी अवधि शून्यकी ब्रह्मरूपता ही सिद्ध होती है। अक्षराम्नायमें असे ओतक १४ स्वर, कसे हतक ३३ व्यञ्जन, अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय और उपध्मानीयके योगसे ५२ अक्षर होते हैं। ॐ अक्षरमूल है। ओङ्कारगत अ ब्रह्मा, उ विष्णु और म महेश है। ˇसदाशिव है। "अर्द्धमात्रा च या मूर्ध्नि परमः स सदाशिवः" (स्कन्दपुराण माहे० कु०३. २५२)

तद्वत् शून्य परा चिति एकरूपा भद्रकाली है। वह घृतसार मण्डतुल्य अति सूक्ष्म है। वह सब अङ्कोंमें अनुगत सर्वनियामक है तथा सबको आत्मसात् करनेमें समर्थ है। शून्य स्वाश्रित बीजशक्तिको दश महाविद्यास्वरूप दशरूपों (अङ्कों) में और तदनन्तर असङ्ख्यरूपोंमें व्यक्त कर उन्हें व्यवस्थित रखनेमें समर्थ है। उसके बोधसे मायापाशका उच्छेद सुनिश्चित है। -

"वशिन्येका निष्क्रियाणां बहूनां
एकं बीजं बहुधा यः करोति।
नानारूपा दशवक्त्रं विधत्ते
नानारूपान् या च बाहून् बिभर्ति।।"

"घृतात्परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं
ज्ञात्वा कालीं सर्वभूतेषु गूढाम्।
कल्पान्ते वै सर्वसंहारकर्त्री
ज्ञात्वा गुह्यां मुच्यते सर्वपापैः।।"

(गुह्यकाल्युपनिषत् ७०,५१)

अङ्कपुर देहगत नवद्वारतुल्य दोसे दशतक सङ्ख्यारूप छिद्रसे युक्त है। इसमें स्थावर - जङ्गम सर्व प्राणियोंकी ध्येया देहगत संविद्रूपा हंसी तुल्य आत्माके सदृश शून्य विहरण कर रहा है। देहगत ब्रह्मरन्ध्ररूप दशवें द्वारके तुल्य एक है। शून्य १ से १० तक स्थावर अङ्कोंका और ११ से असङ्ख्यतक जङ्गम अङ्कोंका परमाश्रयरूप ध्येय है। -

"नवद्वारे पुरे देवी हंसी लीलायतां बहिः।
ध्येया सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च।।"

(गुह्यकाल्युपनिषत् ५०)

श्रीहरिः
श्रीगणेशाय नमः

पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठ-स्वस्तिप्रकाशन संस्थानसे प्रकाशित पुस्तकें

१. शुकसुधा
२. श्वेताश्वतरोपनिषत् अध्याय १-३ (व्याख्यासहित)
३. श्वेताश्वतरोपनिषत् अध्याय ३-६ (व्याख्यासहित)
४. नासदीयसकूक्तम् (सायणभाष्यानुवादसहित)
५. कुन्तीस्तुतिः (विस्तृत व्याख्यासहित)
६. श्रीराधारस और रसिकशेखर
७. श्रीराधारससुधा और श्रीकृष्णरसवैभव
८. पीठपरिषद् और उसके अन्तर्गत आदित्यवाहिनी और आनन्दवाहिनी
९. सुखमयजीवनका सनातनसिद्धान्त
१०. विश्वशान्तिका सनातनसिद्धान्त
११. स्वस्तिकगणित
१२. सार्वभौम सनातनसिद्धान्त
१३. सारार्थदीपिका
१४. शारीरकस्वाराज्यसिद्धिसारसमाख्या
१५. सनातनधर्मियोंका रसरहस्यमय वहुदेवादिवाद
१६. जीवनज्योति
१७. उल्लास-हास
१८. गीताजयन्ती और भीष्मोत्क्रान्ति
१९. सूक्तिसुधा
२०. नीति और अध्यात्म
२१. नीतिसूक्तम्
२२. आयुर्विज्ञान
२३. अध्यात्मरहस्य
२४. श्रीमद्भगवद्गीतामें योगचतुष्टय
२५. सनातनसन्देश

२६. व्रतस्वरूपविमर्श
२७. बालजागरण
२८. श्रीमद्भगवद्गीतामें कर्मतत्त्व
२९. श्रीमद्भगवद्गीतामें पुरुषार्थ चतुष्टय
३०. पूर्वाम्नाय-पुरीपीठ-परिचय-प्रकल्प
३१. श्रीजगन्नाथ और उनकी रथयात्रा
३२. व्यूहरचना
३३. अङ्कपदीयम्
३४. गणितदर्शन
३५. पावनसन्देश
३६. दिग्दर्शन
३७. राष्ट्ररक्षा
३८. परमार्थसार
३७. व्रह्मज्ञानावलीमाला
४०. करुणा, कठोरता और कर्त्तव्यनिष्ठा
४१. The Eternal Principles of Happy Life
४२. श्रीमद्भगवद्गीतामें ज्ञानतत्व
४३. क्रान्तिविन्दु
४४. दिव्यानुभूति (प्रथम भाग)
४५. अवतारमीमांसा
४६. विचित्र सम्वाद
४७. प्रवचनपीयूष
४८. प्रवचनपीयूष
४९. बौद्धागमवृत्तान्त तथा निगमागमसिद्धान्त
५०. नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम्
५१. गणितचिन्तामणि
५२. चतुराम्नाय-चतुष्पीठ
५३. The Philosophy of Mathematics
५४. Swastik - Ganita
५५. Nature of Numbers
५६. Bhagawan Shree Krisna

५७. श्रीगीतासुधा
५८. श्रीराधासुधा
५९. जगदीश्वर, जीव और जगत्
६०. भागवतसुधा
६१. श्रीजगन्नाथाष्टकम्
६२. श्रीसागर - गङ्गा - आरती
६३. ऋग्वेदीय पूर्वाम्नाय - गोवर्द्धनमठ - पुरीपीठ
६४. भगवान् श्रीकृष्ण (हिन्दी अनुवाद)
६५. वैदिकार्षप्रक्रियाप्रकाश
६६. शून्यैकसिद्धि और द्व्यङ्कपद्धति
६७. सनातनधर्म
६८. Sanatan-Dharma
६९. Ganita Chintamani
७०. पूर्वाम्नाय - पुरीपीठ - परिचय - प्रदीप
७१. उद्बोधन
७२. सनातनधर्म-प्रश्नोत्तर-मालिका
७३. भावनोपनिषत् (भाष्यानुवादसहित)
७४. श्रीदक्षिणामूर्त्यष्टकम् (भाष्यानुवादसहित)
७५. योगमीमांसा (सूत्रानुवाद तथा व्याख्यासहित)
७६. Bhagawan Shree Ram
७७. शून्यैकसिद्धि और द्व्यङ्कपद्धति (अङ्ग्रेजी अनुवाद)
७८. द्व्यङ्कपद्धतिकी वैदिकार्षविधा
७९. चित्रालोक
८०. बौद्धसिद्धान्त और वेदान्त
८१. भारत - वैभव
८२. वेदान्तरससार - सर्वसिद्धान्तसमन्वयप्रकार
८३. सनातनसिद्धान्त
८४. द्व्यङ्कादिपद्धतिकी वैदिकविधि
८५. श्रीशिवावतार-भगवत्पाद-आदिशङ्कराचार्य
८६. हस्तामलकस्तोत्रम्
८७. तोटकस्तुतिः

८८. मूकाम्बिकास्तुतिः
८९. श्रीहरिशङ्करस्तुतिः
९०. स्वरूपसिद्धिः
९१. गणितसूत्रम्
९२. राष्ट्रोत्कर्ष-अभियान
९३. राजधर्म
९४. रथारूढ श्रीजगन्नाथादिके दर्शनादिकी मीमांसा
९५. सनातनसन्देश
९६. गुरुवंश-मठाम्नाय-दिग्दर्शन-सेतु-महानुशासनम्
९७. धर्मेश्वरसंहिता
९८. चतुर्व्यूह-परिशीलन
९९. सनातनवर्णव्यवस्थाकी उपयोगिता
१००. दिव्यानुभूति-जीवनज्योति-द्वितीयभाग
१०१. गीताजयन्ती
१०२. महाकुम्भकी दिशा और दशा
१०३. पूज्य श्रीधर्मसम्राट् के महत्त्वपूर्ण उपदेश
१०४. गीतामान
१०५. त्रिपथगा
१०६. प्रणवप्रकल्प
१०७. ज्योतिष-दर्शन
१०८. नीतिनिधि
१०९. उद्गम
११०. अकारो वै सर्वा वाक्
१११. गीताका सार्वभौम सिद्धान्त
११२. गीतोक्त पुरुषोत्तम
११३. 'विचारपीयूष' - सारार्थदिग्दर्शन
११४. शुभसन्देश
११५. श्रीमद्भगवद्गीताकी अद्भुत शैली
११६. गर्वसे कहें - 'हम हिन्दु हैं'
११७. आक्षेपपरिहार-तथ्यप्रकाश
११८. महाभारत-परिशीलन (महाभारतके ऐतिह्यतथ्यका नीति तथा अध्यात्मगर्भित तात्पर्य)

१९९. नीतिसावित्री
१२०. अवताररहस्य
१२१. विकाश-विमर्श
१२२. वेद-विमर्श
१२३. वेदान्त - विज्ञान
१२४. पत्रकारिताकी स्वस्थविधा
१२५. श्रीशङ्कराचार्य - जीवनचरित
१२६. अधिकारमीमांसा
१२७. सेव्य - सेवक - सेवा - स्वरूपविमर्श
१२८. नास्तिक भी आस्तिक
१२९. प्राथमिक - वैदिकार्ष - गणित
१३०. प्राथमिक - वैदिकार्षगणित - सूत्रार्थसंहिता
१३१. माध्यमिक - वैदिकार्ष - गणित
१३२. पूर्वाम्नाय - वैदिकार्ष - गणित
१३३. दुर्गास्तोत्रम्
१३४. गीतासारार्थः
१३५. नीतिचालीसा
१३६. श्रीहरिहरस्तोत्रम्
१३७. गीतासारः
१३८. नीतिचालीसा
१३९. गीतासुधा
१४०. भक्तितथाज्ञान
१४१. भक्तिरसार्णवः
१४२. धर्ममीमांसा
१४३. शरणागति
१४४. अहमर्थ
१४५. धर्मसङ्ग
१४६. मनुदर्शन (दार्शनिक-वैज्ञानिंक और व्यावहारिक धरातलपर मनुस्मृतिकी सर्वकाकालिक उपयोगिता)
१४७. गणितालोक

मुद्रक : लोकवाणी, पटना, मो.: 9334111594, 9431009791